॥ श्री चित्रगुप्ताय नमः ॥

मैथिल कर्ण कायस्थों के

गोत्र एवं प्रवर

तथ्यान्वेषक एवं प्रकाशक :

बैद्यनाथ लाल दास

निवास-हरिपुर गौरीदासटोला

पो०-हरिपुर डीह टोला

भाया-कलुआही

(मधुबनी)

समर्पण

जिन्हें आज तक शूद्र कहा जाता रहा

और

जिनके समस्त शास्त्रीय संस्कार

एवं

देव-पितृ-कर्म—

शूद्र पद्धति से कराये जाते रहे

तथा जिन्होंने स्वयं भी

अपने अस्तित्व के प्रति उदासीन रहकर

अपनी श्रेष्ठता—महत्ता को

केवल पंजी-प्रबन्ध तक ही सीमित रखा।

अपने अस्तित्व-बोध के प्रति

अधिक साकांक्ष होने के लिए

उन समस्त कर्ण-बन्धुओं को

यह छोटा प्रयास-

सादर-सस्नेह-

समर्पित।

—वैद्यनाथ

तथ्यालोचन—

श्रीमन्नान्यपतिर्जेता: गुणरत्नमहार्णव: ।
यत्कीर्त्या जनितो विश्वं द्वितीय क्षीरसागर: ।।
मन्त्रिणा तस्य नान्यस्य क्षत्रवंशाब्ज भानुना ।
देवोयं कारित: श्रीमान् श्रीधर: श्रीधरेण च ।।[1]

बलाइन मूल के बीजी पुरुष श्रीधरठक्कुर द्वारा निर्मित अन्धराठाढ़ी में भगवान विष्णु के प्राचीन मन्दिर में लगे शिलालेख के उपर्युक्त श्लोक, जो आज भी द्रष्टव्य है; की चिह्नित नीचे की दोनों पंक्तियों में स्पष्ट रूप से इस बात की पुष्टि की गयी है कि विजेता श्रीमान् नान्यपति महाराज के मन्त्री, क्षत्रिय-कुल-कमल के सूर्य, श्रीमान् श्रीधरठक्कुर ने इस श्रीधर (विष्णु) मन्दिर का निर्माण किया ।

शाके श्रीहरिसिंहदेव नृपते भूपार्क तुल्योजने ।
तस्माद्यन्तमिते द्विके द्विजगणे पंजीप्रबन्ध: कृत: ।।[2]

नेहरा ग्राम में उत्कीर्णित सरोवरयाग के अवसर पर उद्घोषित मिथिलाके ब्राह्मण एवं कर्ण-कायस्थों के पंजी प्रबन्ध निर्माण सम्बन्धी घोषणा के उपर्युक्त श्लोक की नीचे वाली चिह्नित पंक्ति स्पष्टत: यह उद्घोष कर रही है कि यह पजी प्रबन्ध, द्विजगणों के पंजी प्रबन्ध हैं। द्विज, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों ही हैं, जिन्हें गायत्री उपदेश के बाद वेद में अधिकार हो जाता है। ब्राह्मण यहाँ मैथिल द्विज एवं कायस्थ-क्षत्रिय मैथिल द्विज हैं, जिनके पंजी प्रबन्ध अद्यावधि संरक्षित हैं।

१–'मिथिला कर्ण कायस्थक बीजी पुरुष श्रीधर दास' ले० श्रीदेव लाल दास, स्मारिका–कर्ण कायस्थ महासभा १९८६ पृ० २७

२–'मैथिल ब्राह्मण एवं कर्ण कायस्थक पंजी प्रबन्ध' पृ० १५, १९८१ संस्करण ले० श्रीगणेश राय, विद्याभूषण

ब्रह्मकायसमुद्भूतो कायस्थोब्रह्मसंज्ञकः ।
कलौहिक्षत्रियस्तस्य जपयज्ञेषुराजतम् ।[1]

ब्रह्मा की सम्पूर्ण काया से प्रकट होने के कारण कायस्थ, ब्राह्मण तुल्य ही हैं, किन्तु कलियुग में इनके आचरण-लौकिककर्म-राजकार्य एवं पारलौकिककर्म-यज्ञ, जपादि, क्षत्रिय के होंगे। व्योम संहिता के उपर्युक्त श्लोक में स्पष्ट है कि कलियुग में कायस्थों का व्यवहार क्षत्रियोचित होगा।

पद्मपुराण के कथानक के आधार पर यह सिद्ध है कि ब्रह्माजी ने स्वयं अवन्तिकापुरी (उज्जैन) में उपस्थित होकर सुशर्मा की पुत्री इड़ावती, जो ब्राह्मण कन्या थी, एवं सूर्य भगवान् (विवस्वान) ने उपस्थित होकर अपने पुत्र वैवस्वत मनु (श्राद्धदेव) की पुत्री सुदक्षिणा का विवाह चित्रगुप्त से कराया।[2] ब्राह्मण को ही ब्राह्मण एवं क्षत्रिय कन्या से विवाह का शास्त्रोचित अधिकार है। यदि चित्रगुप्त शूद्र होते तो शूद्र का विवाह, स्वयं ब्रह्माजी एवं विवस्वान (सूर्य) अपनी उपस्थिति में उन ब्राह्मण एवं क्षत्रिय कुमारियों का प्रतिलोम वर्णशंकर विवाह कदापि नहीं करबाते। उपर्युक्त शिलालेखों, राज्याभिलेखों एवं संहिताओं तथा पौराणिक कतिपय उद्धरणों से कायस्थ का वर्ण निर्धारण स्पष्ट होता है।

१–पटना हाईकोर्ट के जजमेंट "Ishwari Pd. V/s Rai Hari Prasad, (1927) ILR Vol, VI, Patna-145. Page. 32

२–'मिथिला दर्पण' प्रकाशक-मुन्शी घनानन्द दास नाहस-रुपौली, प्रकाशन-१९२८ से पूर्व, अति जीर्ण पुस्तक।

कायस्थ समाज, सनातन भारतीय संस्कृति के चतुर्वर्ण में से किस वर्ण में आते हैं, इस सम्बन्ध में विभिन्न आर्ष ग्रन्थों-यथा वेद की आपस्तम्ब शाखा,[१] बृहद् ब्रह्मखण्ड;[१] विष्णु-स्मृति,[१] बृहद् पराशर स्मृति;[१] व्यास स्मृति[१] भविष्य पुराणादि[१] के वचनों के आधार पर परवर्ती धर्मशास्त्रियों के 'व्यवस्था ग्रन्थों' तथा उनके ऊपर आधारित भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों के जजमेन्टों में स्पष्ट हो गया है। इस सम्बन्ध में बंगाल के धर्मशास्त्री पं० श्यामा चरण सरकार के निर्णायक ग्रन्थ 'व्यवस्था दर्पण'[२] के आधार पर यह निर्णय प्राप्त है कि कायस्थ क्षत्रिय थे, किन्तु उन्होंने शदियों पहले क्षत्रिय द्विज वर्णोचित 'बर्मा' की उपाधि छोड़कर 'दास' की उपाधि धारण कर लिया जो शूद्र की उपाधि है तथा इन लोगों ने विधिवत गायत्री युक्त उपनयन संस्कार छोड़कर यज्ञोपवीत भी त्याग दिया, अतः ये शूद्र हो गये हैं। इसी 'व्यवस्था दर्पण' के आधार पर १८८४ ई० में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि कायस्थों की वर्ण संबन्धी समस्या का समाधान पं० श्यामाचरण सरकार के ग्रन्थ 'व्यवस्था दर्पण' में हो चुका है। अतः कायस्थ शूद्र वर्ण में हैं।[3] कलकत्ता उच्च न्यायालय के इस निर्णय का उल्लेख करते हुए और इससे असहमति व्यक्त करते हुए १८८९ ई० में इलाहबाद उच्च न्यायालय ने कायस्थ वर्ण को क्षत्रिय बर्ण घोषित किया।[४]

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक गवेषणापूर्ण जजमेंट १९२७ ई० में पटना हाईकोर्ट द्वारा दिया जा चुका है। अपने ५६पृष्ठ के जजमेंट के ४८ पृष्ठों तक विद्वान न्यायाधीशों ने विभिन्न वेद, संहिताओं, स्मृतियों, पुराणों, ऐतिहासिक लेखों के उद्धरणों द्वारा केवल इसी बात को साबित किया है कि कायस्थ क्षत्रिय हैं

१-पटना हाइकोर्ट के जजमेंट 'Ishwari Prasad V/S. Rai Hari prasad (1927) I.L.R.VI. Patna, No. 145

२-उसी जजमेंट में उद्धृत।

३-कलकत्ता हाइकोर्ट के जजमेन्ट-Rajkumar lal V/S Viseshwar Dayal (1884) I.L.R. 10 Cal. 688.

४-इलाहाबाद हाइकोर्ट जजमेन्ट— Tulsi Ram V/S Behari lal (1889) I. L. R.-12, All.-328.

तथा वे किसी दशा में शूद्र नहीं हैं। अपने जजमेंट में न्यायालय स्पष्ट करता है कि अस्थायी रूप से कोई द्विज अपना संस्कार करना छोड़ दे, तो केवल इसी आधार पर उसे शूद्र नहीं बनाया जा सकता। मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों के अनुसार ऐसा संस्कार त्यक्त द्विज, 'यदि व्रात्यता प्रायश्चित' कर ले, तो वह पुनः द्विजत्व को प्राप्त कर सकता है।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, शताब्दी के प्रायः छठे-सातवें दशक में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी अन्तिम रूप से निर्णय कर दिया है कि कायस्थ, शूद्र नहीं है, बल्कि वे इससे ऊपर के वर्ण द्विज वर्ण में हैं, (Regenerate class is his class)—इस तरह अन्तिम निष्कर्षतः यह स्वीकार किया जा चुका है कि कायस्थ क्षत्रिय द्विज वर्ण में हैं।

शूद्रवर्ण का केवल एक गोत्र होता है, क्योंकि उसे उपनयन युक्त गायत्री उपदेश प्राप्त कर द्वितीय जन्म-द्विजन्म प्राप्त नहीं होता। दूसरी ओर ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णों का उपनयन संस्कार कराकर आचार्य उन्हें गायत्री का उपदेश करके ब्रह्मज्ञान (आत्मज्ञान) रूप द्वितीय जन्म देकर उन्हें 'द्विज' संज्ञा से अभिहित करते हैं। आचार्य, चुके द्विजन्म के पिता होते हैं, अतः आचार्य का गोत्र शिष्य का गोत्र हो जाता है। ब्राह्मणों में अपने ही गोत्र के आचार्य पिता, पितृव्य भ्राता आदि ब्रह्मचारी को गायत्री का उपदेश करते हैं, इसलिए ब्राह्मणों में गोत्र परिवर्तन नहीं होता, बल्कि उनका आर्ष गोत्र (कुलपरम्परा प्राप्त गोत्र) ही रह जाता है, किन्तु क्षत्रिय एवं वैश्यों को उनके आदि गुरु जो उनके वंश में उपनयनादि संस्कार के समय शिष्य ब्रह्मचारी को गायत्री का उपदेश दे चुके होते हैं,[2] उन्ही गुरु के गोत्र उन-उन क्षत्रिय, वैश्य परिवारों के गोत्र हो जाते हैं। ऐसे आचार्य गुरु उस कुल के पुरोहित होते हैं। इसलिए कुलपुरोहितों का त्याग नहीं किया जाता है।

१–पटना हाइकोर्ट जजमेन्ट Ishwari Pd. V/S Rai Hari Prasad, (1927) I L. R. VI, Patna (45) Page—(44, 45)

२–'आर्षगोत्रन्तु विप्राणां तदन्येषां गुरोरिव शाखाभेदाद् गुरोभेदाद् गोत्रादीनान्तु सर्वशः।'...'विष्णुरहस्य' वचन जातिभास्कर के पृ० २१४ पर उद्धृत।

यदि अपने कुल पुरोहित का त्याग कर दिया जाय और अन्य आचार्य से गायत्री संस्कार लिया जाय, तो पुनः शिष्य के गोत्र परिवर्तन हो जाने की समस्या हो जाती है। निर्णय सिन्धु के वचन द्वारा क्षत्रिय एवं वैश्यों के गोत्र पुरोहित गोत्र के होते हैं, यह वचन सिद्ध है।[1]

गोत्रों में श्रेष्ठ ऋषियों के नाम पर उन गोत्रों के 'प्रवर' का निर्धारण तीन या पाँच की संख्या में होता है। इस तरह गोत्रों में तीन प्रवर ऋषि होते हैं अथवा पाँच प्रवर ऋषि 'प्रवर' अर्थात् 'प्रबल' श्रेष्ठ ऋषि। द्विजातियों के बीच इन गोत्रों और प्रवरों की बड़ी महत्ता है। इसी के आधार पर उनकी जाति शाखा निर्धारित होती है। एक गोत्र के बालक-बालिकाओं का सम्बन्ध भाई-बहन का होता है। अतः सगोत्र विवाह निषिद्ध होता है। वैवाहिक सम्बन्ध निर्धारण के समय सगोत्र विवाह का निवारण कर दिया जाता है। कन्यादान के समय वर एवं कन्या दोनों के अपने-अपने गोत्रों एवं प्रवरों का उद्घोष किया जाता है। इसके बिना कन्यादान का संकल्प पूरा नहीं होता। बालकों के चूड़ाकरण एवं गायत्री सहित उपनयन के समय संकल्प वाक्यों में गोत्र एवं प्रवरों का उच्चारण अनिवार्य होता है। इसी तरह अन्य सभी देव एवं पितृ कर्म के समय संकल्प के साथ अपने गोत्र का उच्चारण आवश्यक होता है। इस तरह सभी माङ्गलिक कृत्य-यज्ञ एवं देव पूजनादि के साथ-साथ श्राद्ध एवं एकोदिष्ट पार्वणादि के समय गोत्रोच्चारण पूर्वक संकल्प लेना अनिवार्य होता है।

द्विजातियों में गायत्री मन्त्र ही प्रधान मन्त्र है, क्योंकि यह वेद का मूल मन्त्र है। प्रणव "ॐ"कार सहित गायत्री मन्त्र का अनुशीलन एवं गायत्री की उपासना से ही वैदिक उपासना पूर्ण हो जाती है।

अतः गायत्री मन्त्र ही मूल मन्त्र है तथा गायत्री उपासना ही वेद की मौलिक उपासना है। प्राचीन काल के सभी वेद मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने

---

१ "क्षत्रियवैश्योऽस्तु पुरोहित गोत्र प्रवरावेत्ति सर्वसिद्धान्तः।"

—निर्णय सिन्धु तृतीय परिच्छेद पृ० ५६८।

सर्वप्रथम इसी मन्त्र का अनुशीलन किया है। यह परम्परा आज तक द्विजातियों में चली आ रही है। आज का द्विज-समाज अपने इस संस्कार के प्रति जितना अनुप्राणित है, यह एक अलग बात है, किन्तु इससे वैदिक उपासना का महत्व कम हो जाय यह नहीं है।

कर्ण समाज के कई मूलों में द्विजों के उपनयन संस्कार की तरह मण्डप-निर्माण कर वैदिक मन्त्रों से बालकों का चूड़ाकरण होता है। उन्हें मूंज-मेखलादि सहित यज्ञोपवीत की तरह मृगचर्म धारण कराया जाता है। आचार्य भी पिता या चाचा होते हैं। ब्राह्मणों की तरह अष्ट ब्राह्मण भोजनोत्सव होता है, किन्तु ब्राह्मणों की तरह उपनयन, वेदारम्भ एवं समावर्तन नहीं होता। यह साबित करता है कि पहले कर्ण कायस्थ के सभी परिवारों में द्विजोचित उपनयन संस्कार होते थे, जिसके अवशेष आज भी कई परिवारों में देखे जा रहे हैं। कई परिवारों में इसके विपरीत अलग-अलग व्यवहार हैं। किसी में बालक के जन्म के षष्ठी पूजन के पूर्व क्षौर कर्म कराकर इतिश्री हो जाता है। किसी में मुण्डन और चूड़ाकरण एक ही दिन हो जाता है, किसी में मुण्डन और चूड़ाकरण अलग-अलग होता है, किन्तु इन सब में मण्डप-विहीन ही ये कृत्य होते हैं। यज्ञोपवीत धारण तो प्रायः कुछेक परिवारों को छोड़कर कहीं नहीं होता। वहाँ भी चूड़ाकरण के समय अविधि पूर्वक यज्ञोपवीत धारण करा दिया जाता है, क्यों कि यज्ञोपवीत तो गायत्री मन्त्र दान का अनिवार्य अङ्ग है जो उपनयन कर्म में ही होता है। इन कर्म लोपों के कई कारण हैं; जिनमें एक है अपनी उपेक्षापूर्ण प्रवृत्ति और दूसरी है मुसलमान शासकों की छत्रछाया में रहते हुए अपनी जीविका की रक्षा हेतु भय एवं विवशता वश अपने संस्कारों का त्याग। मैंने तो उत्तर प्रदेश में श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में यहाँ तक देखा है कि उनके यहाँ बालकों का मुसलमानों की तरह "खतना" कराया जाता है तथा "अक्षरारम्भ" के दिन पण्डित जी के साथ मौलवी साहब भी आकर 'अलिफ-बे' आरम्भ बालकों को कराते हैं।

कर्ण-कायस्थों में केवल एक गोत्र—"काश्यप गोत्र" का प्रचलन देखा जाता है। किन्तु यदा-कदा यह बात सुनने को मिलती थी, कि सबों का एक ही गोत्र नहीं है, बल्कि अलग-अलग मूलों के अलग-अलग गोत्र हैं। कई ग्रामों में इन विभिन्न गोत्रों के प्रचलन भी ज्ञात होते थे। संयोग से नाहस ग्राम निवासी श्री कमलापति दास जी ने कंचनपुर (नेपाल) के बगल में स्थित "ओदराहा" ग्राम के एक कर्ण-बन्धु से कर्ण-कायस्थों के ३६० मूलों के ३१ गोत्रों में निर्धारित अभिलेख बड़ी कठिनाई से उपलब्ध किए। ओदराहा ग्राम से उपलब्ध इस गोत्र निर्धारण अभिलेख का आधार कमलाकर भट्ट द्वारा लिखित "कमलाकर याज्ञवल्क्य" नामक ग्रन्थ है, जैसा कि कमलापति दास जी के अभिलेख में देखने को मिला। इस ग्रन्थ का रचनाकाल शाके १६४५ तथा १३२४ ईस्वी है।

लक्ष्मीपुर (मधेपुर) निवासी पंजीकार स्व० श्री बासुदेव मल्लिक जी ने भी उक्त कंचनपुर से ही इन ३६० मूलों के ३१ गोत्रों में विभाजित सूची जन्य अभिलेख प्राप्त किया था, जैसा कि उनके आत्मज श्री योगेन्द्र मल्लिक जी ने बताया। चूँकि वर्तमान पंजी-प्रबन्ध में इन ३६० मूलों में से मात्र ८१ मूलों के प्रबन्ध जन्य अभिलेख—'उतेढ़' प्राप्त हैं, शेष २७९ मूल या तो नासखा होकर विस्मृत हो चुके हैं अथवा पंजी-प्रबन्ध से अपना सम्बन्ध तोड़कर अन्यत्र चले गए, अत: ऐसे परिविस्मृत मूलों के गोत्रों का उल्लेख अब निष्प्रयोजन हो चुका है। इसलिए पंजीकार जी ने शेष प्रचलित ८१ मूलों का गोत्र निकाल कर उनमें कुछेक संशोधन कर प्रकाशित करने हेतु ग्रन्थ तैयार कर लिया, किन्तु उनके अकस्मात् शरीर छोड़ देने के कारण वे अपने इस प्रयास में सफल नहीं हो सके। यह कार्य उनके सुपुत्र श्री योगेन्द्र मल्लिक, वरिष्ठ सदस्य, बिहार राज्य कर्ण कल्याण परिषद् तथा बिहार मन्त्री, अखिल भारतीय कायस्थ महासभा, दिल्ली द्वारा सम्पन्न होने जा रहा है। मैंने श्री योगेन्द्र मल्लिक जी से सम्पर्क कर उनके पास संरक्षित पाण्डुलिपि देखा है। उसमें भी स्व० पंजीकार जी उल्लेख कर रहे हैं कि इन गोत्रों का निर्णय मैं 'कमलाकर भट्ट' की पुस्तक के आधार पर ही कर रहा हूं।

आधार ग्रन्थ जो भी हो, कई जगहों में तो इन गोत्रों के प्रचलन बहुत पहले से आ रहे हैं, ऐसा विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है। यथा दरभंगा से पूरब निमैठी, बरुआरा आदि ग्रामों में। सीतामढ़ी या मुजफ्फरपुर जिले में स्थित 'बलहा' ग्राम में भी इन अलग-अलग गोत्रों का प्रचलन है।

स्व० श्री बासुदेव मल्लिक जी ने अपनी संशोधित मूलों वाली गोत्रों की सूची जनकपुर निवासी पंजीकार श्री विश्वनाथ मल्लिक जी को भी उपलब्ध कराया, जिनसे व्यक्तिगत संपर्क करके उक्त सूची को देखने का प्रयास किया गया। इस सूची में बहुत सारी त्रुटियाँ देखने में आयीं। अतः स्व० बासुदेव मल्लिक जी के सुपुत्र श्री योगेन्द्र मल्लिक जी से व्यक्तिगत सम्पर्क करके उक्त सूची को सम्यक् रूप से संशोधित करने का प्रयास किया गया है। अतः इसके साथ ८१ मूलों का विभिन्न गोत्रों में निर्धारण जो कंचनपुर से प्राप्त सूची के अनुकूल है। उसमें थोड़े-से संशोधनों के साथ यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

कर्ण-कायस्थों को भी क्षत्रियोचित वाजसनेय तथा छन्दोग्य पद्धतियों में से अपने-अपने गोत्र के लिए विहित पद्धति से चूड़ाकरण, उपनयन, सन्ध्या-गायत्री उपासना, विवाह, श्राद्ध, एकोदिष्ट, पार्वणादि समस्त शास्त्रीय कर्मों का अनुष्ठान अनिवार्य होगा। क्षत्रियोचित श्राद्ध की अवधि पन्द्रह दिन की है। तेरहवें दिन केवल ब्राह्मणों के लिए है। वैसे आज तो सर्वत्र व्यवहार संकटता है, किन्तु श्रद्धा विश्वासपूर्ण परिवार शास्त्र अनुकूल आचरण पर आज भी अडिग है। अतः कायस्थों में क्षत्रियोचित पन्द्रहवें दिन असौच निवृत्ति का प्रबर्तन तदनुकूल श्राद्धादि कर्म का प्रवर्तन आवश्यक होगा। श्राद्ध कर्म भी छन्दोग्य या वाजसनेय पद्धति, जिनको जो विहित होगी उसके अनुसार कर्म सम्पादन आवश्यक होगा। अतः इसका भी निर्णय यहाँ आवश्यक है। इस सम्बन्ध में शास्त्र का निर्णय है—

कश्यपो वत्स शाण्डिल्यो कौशिकञ्च धनञ्जय ।
षडेते सामगा विप्रा: शेषा: वाजसेयिन: । [१]

अर्थात कश्यप, वत्स, शाण्डिल्य और कौशिक गोत्र एवं उनके प्रवर ऋषियों के गोत्र यथा देवल, और्वच्यवन, भार्गव, जामदग्नि, आप्नवान, अनयध्रुव आदि गोत्रों के सभी शास्त्रीय कर्म सामवेदीय शाखा वाली छान्दोग्य पद्धति से होंगे, शेष सभी गोत्रों के शुक्ल यजुर्वेदीय शाखा वाली वाजसनेय पद्धति से होंगे ।

विभिन्न गोत्रों के कितने प्रवर हैं और उन प्रवरों के ऋषि लोग कौन-कौन हैं, इन सब का भी शास्त्रीय अनुष्ठानों के समय उच्चारण आवश्यक होगा। केवल 'त्रिप्रवर' 'पंचप्रवर' कहने से कर्म लोप का दोष है। अत: इन मूलों के साथ-साथ गोत्र एवं उनके प्रवरों का स्पष्ट विवरण इसके साथ दिया गया है।

'व्रात्यता प्रायश्चित्त' के बाद ही उपनयन का शास्त्रीय अधिकार मिलता है, जैसा कि पटना उच्च न्यायालय के जजमेन्ट में भी यही निर्णय है; अत: पं० श्री रामचन्द्र झा व्याकरणाचार्य द्वारा प्रणीत एवं चौखम्बा विद्या भवन काशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ — 'कन्यादान तत्व विमर्श' के पृष्ठ २३ पर उद्धृत पं० अमृतनाथ शर्मा कृत प्रायश्चित व्यवस्था सार समुच्चयोक्त लघुप्रायचित रूप 'व्रात्यता प्रायश्चितम्' के अनुसार व्रात्यता प्रायश्चितात्मक गोदान विधि: का यहाँ मूलरूप में समावेशित किया जा रहा है, जिसमें तीन सवत्सा गोदान अथवा उसका मूल्य रूप कम-से-कम १२५) रु० रूप निकष दान, उपनयन के दिन आभ्युदयिक श्राद्ध से पूर्व किया जाता है —

"अथ व्रात्यता प्रायश्चित्तात्मक: गोदान विधि: "

तत्र कृतनित्यक्रिय: आचार्य: आभ्युदयिक श्राद्धात् पूर्वं पूर्वाभिमुख:, कुमारं स्वदक्षिणपार्श्वं उपवेश्य, कुशत्रय पुष्प अक्षतै: त्रिधेनु मूल्यक सपाद् शतरूप्योपरि—

१-"मैथिल ब्राह्मण एवं कर्णकायस्थक पंजीकरण" पृ० १३ ले० पं० गणेश राय 'विद्याभूषण'।

ॐ एतावद् द्रव्यमूल्यक त्रिधेनु सहिताय नमः ॥३॥ (कलहार) कुर्वाणेति— ॐ ब्राह्मणाय नमः ॥३॥ (अयवार) इति त्रिः सम्पूज्य करेण निक्षिप्य, कुशतिल-जलान्यादाय—

ॐ अद्य अमुक मासीय-अमुक पक्षीय अमुक तिथौ अमुक गोत्रस्य अमुक शर्मा की अमुक कुमारस्य उपनयन कालातिक्रमण जन्य प्रायश्चित्त दोष-प्रशमनार्थं एतावद्द्रव्य-मूल्यका: धेनुत्रयात्मिका: गा: रुद्रदैवताका: यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाहं ददे।

'ॐ स्वस्ति' इति प्रति वचनम् ।

दक्षिणा—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—

ॐ अद्य कृतैतत् निष्क्रयरूप धेनुत्रय दान प्रतिष्ठार्थं एतावद् द्रव्यमूल्यकहिरण्य-मग्नि दैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। 'ॐ स्वस्ति' इति प्रति-वचनम् ।

अन्त में इस निवेदन के साथ यह अभिलेख अपने कर्म बन्धुओं के हाथ समर्पित कर रहा हूं कि अब इस गोत्र एवं प्रवर के प्रवर्तन के फलस्वरूप कर्णकायस्थ का क्षत्रियत्व सिद्ध होना सहज हो जायगा। पंडितों से लोग हमें यही कहा करते थे—"आप लोग सगोत्रीय विवाह करते हैं— लड़का का भी काश्यपगोत्र, लड़की का भी काश्यप गोत्र। सगोत्र विवाह तो केवल शूद्र में होता है। अतः आप लोग शूद्र हैं।" उनका कथन हिन्दू धर्मशास्त्र मनु एवं याज्ञवल्क्य के वचनों के आधार पर सही है। हमें क्षत्रियत्व पर कायम रहने के लिए केवल मूल का आधार ही नहीं गोत्र का भी आधार रखना अनिवार्य होगा। मूल तो अति आधुनिक आधार है, जिसमें केवल पाँच और सात पीढ़ी तक अस्वजनता देखी जाती है। उससे भी प्राचीन एवं सशक्त शास्त्रीय आधार गोत्र है। अतः जैसे ब्राह्मणों में सर्वप्रथम सगोत्रता का वर्जन होता है तब मूल के सात-पाँच पीढ़ियों की अस्वजनता देखी जाती है उसी प्रकार हमें भी यह नीति अनिवार्यतः अपनानी होगी। इस पर कायम रहने के लिए अपने गोत्र में पड़ने वाले एक या दो मूलों को समगोत्रीय जानकर उनके बीच वैवाहिक सम्बन्ध छोड़ना होगा। इस में कोई विशेष समस्या नहीं आएगी। मैथिल ब्राह्मण समाज ने

तो समगोत्रीय हो जाने की समस्या छः-छः, सात-सात मूलों तक के साथ आ जाती है, क्योंकि एक ही गोत्र में इतने-इतने मूल पड़ते हैं, फिर भी वे लोग इस-पर कायम हैं। हमें तो केवल एक या दो मूलों को छोड़ने पड़ेंगे। केवल इसी एक छोटे त्याग एवं उपनयन-गायत्री सन्ध्या रूप कुछ आर्य आचरणों को ग्रहण करके हम विशुद्ध द्विज क्षत्रियत्व को प्राप्त कर सकेंगे। इसी महान् उद्देश्य से यह प्रयास आपकी सेवा में समर्पित है साथ ही इसके अनुमोदनार्थं बिहार राज्य कर्ण कल्याण परिषद् के नवम् महाधिवेशन के पटल पर उपस्थापित एवं एतद्वारा प्रस्तावित है।

भाद्रकृष्ण एकादशी
१ सितम्बर '६४
स्थान — हरिपुर।

विनयावनत—
बैद्यनाथ लाल दास

गोत्र, प्रवर एवं मूलों के स्थान निर्धारण

गोत्र	प्रवर	मूल
१. शाण्डिल्य गोत्र:	शाण्डिल्यासितदेवलास्त्रय-प्रवरा:	बलाइन नरहरि तथा रजेड़ापाल
२. वत्स गोत्र:	और्वच्यवनभार्गव जामदग्न्या-प्नवान पंच प्रवरा:	नरंगवाली, सहोरा, घासीपाल
३. काश्यप गोत्र:	काश्यपावत्सारणेध्रुव-स्त्रय प्रवरा:	कोठीपाल, बिजलपुर तथा जयतुङ्ग
४. कात्यायन गोत्र:	कात्यायनविष्णवङ्गिरस-स्त्रय प्रवरा:	ओएव तथा बलालपुर
५. कौशिक गोत्र:	कौशिकात्रिजमदग्नि स्त्रय प्रवरा:	गड़्कब, आदित्यपुर तथा दिपतिपाल
६. कृष्णात्रेय गोत्र:	कृष्णात्रेयाप्नवान सारस्वत-स्त्रय प्रवरा:	बत्तिकबाल तथा नेउरी
७. गौतम गोत्र:	आङ्गिरसोवशिष्ठवार्हस्पत्य-स्त्रय प्रवरा:	महुनी, बारा तथा सुन्दर
८. भारद्वाज गोत्र:	भारद्वाजाङ्गिरसवार्हस्पत्य-स्त्रय प्रवरा:	बत्सन्तपुर तथा मेहथु
९. आङ्गिरस गोत्र:	आङ्गिरस: भारद्वाजवार्ह-स्पत्यस्त्रय प्रवरा:	शीशव, कोडारी तथा बरहड़ी
१०. माण्डव्य गोत्र:	माण्डव्यगार्गधृत कौशिका-थर्व वैशम्पायन पंच प्रवरा:	अठंहर, बड़िसामा तथा गोड़ापाल
११. शक्ति गोत्र:	शक्तिवशिष्ठपराशरस्त्रय प्रवरा:	गढ़निधि तथा तेरसि
१२. सारस्वत गोत्र:	सारस्वतकृष्णात्रेयाप्नवान स्त्रय प्रवरा:	पकली तथा सरिसव

गोत्र	प्रवर	मूल
१३. भार्गव गोत्र:	और्वच्यवनभार्गव जामदग्न्याप्नवान पंच प्रवरा:	माण्डीछ, हरिपुर तथा बखोला
१४. साङ्कृति गोत्र:	आङ्गिरसगौरवीत साङ्कृत स्त्रय प्रवरा:	बीयर तथा नरड़ा
१५. विष्णुवृद्धि गोत्र:	विष्णुवृद्धिपौरुकुत्सत्रसदस्य स्त्रय प्रवरा:	अमहला, कछड़ा तथा महथापाल
१६. अनयध्रुव गोत्र:	काश्यपावत्सारणेध्रुव स्त्रय प्रवरा:	अजबड़ापाल तीयल तथा ढांगा
१७. गार्ग्य गोत्र:	गार्ग्यधृत कौशिकमाण्डव्याथर्वन वैशम्पाचना पंच प्रवरा:	उदयनपुर, काञ्चनपुर तथा बोकाने
१८. यामदग्न्य गोत्र:	कौशिकात्रिजामदग्न्यस्त्रय प्रवरा:	डढ़िया, सुखरासी तथा कुसोन
१९ और्व गोत्र:	और्वच्यवनभार्गव जामदग्न्याप्नवाना पंच प्रवरा:	कोरौनी परसौनी तथा पोखराम
२०. पराशर गोत्र:	शक्तिवशिष्ठपराशरस्त्रय प्रवरा:	केउटी नान्यपुर तथा रतनपाल
२१. देवल गोत्र:	आङ्गिरसगौरवीतसाङ्कृति स्त्रय प्रवरा:	खैरी सीवा तथा होइया
२२. अत्रि गोत्र:	अलाबुकाबसागद गौतम-वशिष्ठस्त्रय प्रवरा:	गढ़वीयर तथा बरैल
२३. आस्तीक गोत्र:	आस्तीककौशिककौण्डिल्य-स्त्रय प्रवरा:	धनौली एवं नन्दाम
२४. सावर्ण्य गोत्र:	और्वच्यवनभार्गवजामदग्न्याप्नवाना पंच प्रवरा:	धरौर तथा मुङ्कर
२५. कौण्डिल्य गोत्र:	आस्तीक कौशिक कौण्डिल्य स्त्रय प्रवरा:	परड़ी, बनैली तथा सरैसो

	गोत्र	प्रवर	मूल
२६.	च्यवन गोत्र:	च्यवनौर्वभार्गव जामदग्न्या प्नवाना पंच प्रवरा:	फुलथुआ तथा गढ़चाउरी
२७.	वशिष्ठ गोत्र:	वशिष्ठात्रिसाङ्कृतिस्त्रय प्रवरा:	बेंक तथा बघैल
२८.	मौद्गल्य गोत्र:	मौद्गल्याङ्गिरसवार्हस्पत्य स्त्रय प्रवरा:	महिसी तथा राघोपुर
२९.	आप्नवान गोत्र:	औवंच्यवनभार्गवजामदग्न्या- प्नवाना पंच प्रवरा:	रीतहट, कोलौथ तथा धमोड़ा
३०.	त्रसदस्य गोत्र:	विष्णुवृद्धि पौरुकुत्सत्रसदस्य- स्त्रय प्रवरा:	झड़का, धानव तथा धमौड़ा
३१.	गौरवीत गोत्र:	आङ्गिरसगौरवीत साङ्कृति- स्त्रय प्रवरा:	अन्धरा, सोमनपुर तथा ओआरी
			कुल ८१ मूल

गोत्र निर्णय का आधार

कमलाकर भट्ट कृत 'कमलाकर याज्ञवल्क्य', प्राप्त जानकारी के अनुसार।

रचनाकाल—शाके १२४५, १३२४ ई०।

नोट—कर्ण-कायस्थों के ३६० मूलों के गोत्र निर्धारण सम्बन्धी अभिलेख उपलब्ध हैं। उनमें से केवल उपर्युक्त ८१ मूल ही प्रचलित हैं; यह जानकारी दो पंजीकारों, स्व० श्री बासुदेव मल्लिक लक्ष्मीपुर (मधेपुर) एवं श्री विश्वनाथ मल्लिक, जनकपुरधाम (नेपाल) द्वारा प्राप्त हुई। अतः उसी के आधार पर ८१ मूलों के गोत्र यहाँ प्रकाशित किए जा रहे हैं। किन्हीं की जानकारी में इनके अतिरिक्त और मूलों के प्रचलन हों तो वे अविलम्ब मुझे सूचित करने का कष्ट करें, ताकि अगले संस्करण में उनका स्थान दिया जा सके।

—अन्वेषक